International Journal of Applied Research 2021; 7(12): 69-70

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(12): 69-70
www.allresearchjournal.com
Received: 04-10-2021
Accepted: 06-11-2021

Rashmi Arya
PhD Student, Department of Sanskrit, Delhi University, Delhi, India

Corresponding Author:
Rashmi Arya
PhD Student, Department of Sanskrit, Delhi University, Delhi, India

व्याकरणदर्शन का उद्भव एवं उसकी समृद्ध परम्परा

Rashmi Arya

प्रस्तावनाः

सामान्यव्यवहार में दर्शन शब्द का प्रयोग देखने के अर्थ में किया जाता है परन्तु प्रेक्षणार्थक दृशिर्–धातु से निष्पन्न दर्शन शब्द आध्यात्मिक अर्थ को सम्बोधित करता है। करण में ल्युट्–प्रत्ययान्त दर्शन शब्द शास्त्र का वाचक होता है। जिसका अर्थ है ऐसा शास्त्र जो ब्रह्म का दर्शन कराये अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति कराये दर्शन–शास्त्र कहलाता है। जिस प्रकार दर्शनशास्त्र में ब्रह्म के स्वरूप का निर्वचन किया गया है एवं संसार के कार्यकारण भाव का प्रतिपादन है। उसी तरह व्याकरणदर्शन में भी शब्दब्रह्म की कल्पना करके सम्पूर्ण संसार को शब्द–तत्त्वात्मक ब्रह्म का विवर्त माना गया है तथा उस शब्दतत्त्वात्मक ब्रह्म को आदि एवं अन्त से रहित कहा गया है।''[1]

अनादिनिधनं ब्रह्म, शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन, प्रक्रिया जगतो यतः।।

प्राचीन समाज एवं भारतीय संस्कृति में मनुष्य के जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष–प्राप्ति ही बताया गया है परन्तु ज्ञान के अभाव में मोक्ष सम्भव नहीं है। इसी बात को जानकर श्रुति को प्रमाण के रूप में उपस्थित करके ज्ञान प्राप्ति पर तथा उसमें भी आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति पर अधिक बल दिया गया। अतः मोक्ष–प्राप्ति मनुष्य का परमकर्त्तव्य माना गया है। जिस कारण विद्वानों, दार्शनिकों आदि ने शास्त्रों के अनुशीलन की चरम परिणति मोक्ष में मानकर समस्त शास्त्रों को मोक्ष के हेतु आध्यात्मिक ज्ञान से जोड़ा और शास्त्रों को उसी के अनुरूप बनाया। इसी परम्परा में ''संस्कृत–व्याकरण–शास्त्र'' जो कि शब्द–साधुत्व और संस्कृत भाषा को सुसंगठित करने वाला शास्त्र था, में दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुरूप व्याकरण–सिद्धान्तों की कल्पना करके 'व्याकरण–दर्शन' नामक व्याकरण की एक नवीन शाखा का प्रादुर्भाव हुआ।

व्याकरण–दर्शन में प्रमुख रूप से धात्वर्थ, तिङर्थ, सुबर्थ, लकारार्थ, स्फोट, समासशक्ति, शब्द–शक्ति, लिङ्ग, निपातार्थ, नामार्थ आदि का अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त शब्द ब्रह्म की परिकल्पना का अत्यन्त मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। दर्शनशास्त्र में ब्रह्म के स्वरूप के प्रतिपादन के लिए परम प्रमाण के रूप में श्रुति को उपस्थित करते हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए आचार्य भर्तृहरि शब्दतत्त्वात्मक ब्रह्म की नित्यता और जगत के आधारत्व को वेदानुमोदित मानते हुए कहते हैं– ''जो भिन्न शक्ति के व्यपाश्रयण से एक ही रूप में वेद में आम्नात है, और जो शक्तियों के आश्रयण से अपृथक् होने पर भी पृथक् के समान वर्तमान है।''[2]

एकमेव यदाम्नातम्, भिन्नशक्तिव्यपाश्रयात्।
अपृथक्त्वेऽपि शक्तिभ्यः, पृथक्त्वेनेव वर्तते।।

व्याकरण का दार्शनिक चिन्तन कोई नया नहीं अपितु अत्यन्त प्राचीन है। हमें दर्शनों का जो स्वरूप आज प्राप्त होता है, उसका बीज तो ऋग्वेद और अथर्ववेद में प्राप्त होता है। अथर्ववेद [3] में कहा गया है कि वाणी वक्ता में नित्य रूप में रहती है। इसी प्रकार ऋग्वेद [4] भी वाक् को नाना रूपों वाला और नित्य बताता है–

वाचा विरूपनित्यया

वर्तमान में प्राचीन दार्शनिक चिन्तन की कोई विपुल सामग्री उपलब्ध तो नहीं है परन्तु कुछ उद्धरणों से यह अवश्य प्रतीत होता है कि भारतीय ऋषियों मनीषियों का ध्यान व्याकरण के दार्शनिक विवेचन

की ओर काफी समयपूर्व ही आकृष्ट हो चुका था। महर्षि पाणिनि के सूत्र [5] में ऋषि स्फोटायन का उल्लेख प्राप्त होता है। इनका समय लगभग ईसा से 3050 वर्ष पूर्व था। इन्होंने स्फोट पर विचार प्रस्तुत किया। स्फोट पर ही श्रीमद्भागवत्पुराण [6] के दशम स्कन्ध में भी उल्लेख मिलता है–

दिशां त्वमवकाशोऽपि, दिशः खंस्फोट आश्रयः।
नादो वर्णत्वमोङ्कारः, आकृतीयं पृथक् कृतिः।।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि स्फोट का विचार भी अत्यन्त प्राचीन है। इसी तरह महाभारत के शान्तिपर्व में शब्दब्रह्म का उल्लेख किया गया है।[7] अतः हम स्पष्टतया कह सकते हैं कि व्याकरण के दार्शनिक चिन्तन का मूल प्राचीन पुराणादि ग्रन्थों में विद्यमान था।

आचार्य दाक्षायण ने 3000 ई.पू. में 'संग्रह'[8] नामक व्याकरण के ग्रन्थ के रूप में स्वकीय सिद्धान्तों को संस्कृत जगत् में प्रसारित किया। इनका नाम व्याडि भी था। तदनन्तर पतञ्जलि ने 1950 ई.पू. में अपने महाभष्य में व्याकरण के सूत्रों पर प्रवचन के अतिरिक्त दार्शनिक सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या की है।[9] 700 ई. पू. महामुनि यास्काचार्य ने निरुक्त में शब्द के नित्यानित्यत्व पर काफी विचार किया है।[10]

आचार्य शाकटायन भी व्याकरण दर्शन के विचारक के रूप में ज्ञात हैं। उपसर्गों के द्योतकत्व–वाचकत्व के प्रसंग में इनके मत को निरुक्तकार यास्काचार्य ने उद्धृत किया है। व्याकरण दर्शन विचारकों की इसी परम्परा में आचार्य गार्ग्य भी हैं।[11] आचार्य गार्ग्य का भी उल्लेख यास्काचार्य द्वारा ही निरुक्त में किया गया है–

उच्चावचाः पदार्थाः भवन्तीति गार्ग्यः।।

आचार्य भर्तृहरि द्वारा 350 ई.पू. में 'वाक्यपदीयम्' नामक ग्रन्थ की रचना की गई जिसमें व्याकरण के दार्शनिक विचारों को प्रस्तुत किया गया है। 'वाक्यपदीयम्' नामक इस ग्रन्थ पर टीका हेलाराज द्वारा ईसा की 10वीं, 11वीं शताब्दी में लिखी गई। तदनन्तर ईसा की 12वीं शताब्दी में पुरुषोत्तम देव द्वारा 'कारकचक्र' और 14वीं शताब्दी में वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार सायणाचार्य द्वारा 'सर्वदर्शन–संग्रह' नामक ग्रन्थ की रचना की गई। जहाँ व्याकरण–दर्शन के सिद्धान्तों का कुछ अंश प्राप्त होता है। शेषकृष्ण द्वारा 'शब्दाभरण' और 'स्फोट–तत्त्व निरूपण' इन दो ग्रन्थों का निर्माण ईसा की 14वीं शताब्दी से लेकर 16वीं शताब्दी के मध्य किया गया। इसी समय में महावैयाकरण भट्टोजिदीक्षित ने शब्दकौस्तुभ, वैयाकरण सिद्धान्त–कारिका का निर्माण करके व्याकरण दर्शन शास्त्र की परम्परा को बहुमूल्य धरोहर प्रदान की है। ईसा की 17वीं एवं 18वीं शताब्दी में कौण्डभट्ट ने 'वैयाकरण भूषणसार' का निर्माण किया, जहाँ आचार्य भट्टोजिदीक्षित द्वारा लिखी गई कारिकाओं का ही व्याख्यान है। कौण्डभट्ट के पश्चात् गिरिधर भट्टाचार्य ने 'विभक्त्यर्थ–निर्णय', जगदीश भट्टाचार्य ने 'शब्दशक्तिप्रकाशिका', गोकुलनाथ ने 'पदवाक्य–रत्नाकर', आचार्य भरतमिश्र ने 'स्फोटवाद', आचार्य श्रीकृष्ण भट्ट ने 'स्फोटचन्द्रिका' तथा आचार्य कृष्णमित्र ने 'वादसुधाकर', 'लघुविभक्त्यर्थ–निर्णय' एवं 'वृत्तिदीपिका' इन तीन ग्रन्थों की रचना की।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्याकरण–दर्शन का जो मूल वेदों में बीजरूप में उपलब्ध था, उसे अंकुरित करने का श्रेय आचार्य दाक्षायण को प्राप्त होता है। पतञ्जलि से लेकर आचार्य भर्तृहरि तक अनेकों विद्वानों ने व्याकरण–दर्शन की विचारधारा को पल्लवित किया किन्तु व्याकरण के इस दार्शनिक चिन्तन को पुष्पित करने का गौरव आचार्य भर्तृहरि को ही प्राप्त है जिन्होंने 'वाक्यपदीयम्' नामक ग्रन्थ के निर्माण द्वारा व्याकरण–दर्शन की परम्परा को उपकृत किया।

संदर्भ सूची

1. वाक्यपदीयम्, भर्तृहरि, पृष्ठ 1
2. वा.प., भर्तृहरि, पृष्ठ 51
3. वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठाः (2–1–4, अथ.वे.)
4. 8–7 5–6, ऋ.वे.
5. अवङ्स्फोटायनस्य (अ. 6, पा. 1, सू.स. 123)
6. श्रीमद्., स्क. 10, अ. 85, श्लो. 9, पृष्ठ 309
7. वेदाः प्रमाणं लोकानाम्, न वेदाः पृष्ठतः कृताः। द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये, शब्दब्रह्म परं च यत्।। शब्दब्रह्मणि निष्णातः, परं ब्रह्माधि गच्छति। शरीर–मेतत् कुरुते, यद्वेद कुरुते तनुम्।। (म.भा., रामनायणकृत व्याख्या, शा.प., अ. 270, पृष्ठ 123
8. शोभना खलु दाक्षायणस्य संग्रहस्य कृतिः। (2–3–66, म.भा.)
9. सं.व्या.शा. का इति., युधि.मी., पृष्ठ 434
10. नि., यास्काचार्य, प्रथमाध्याय, प्रथमपाद, पृष्ठ 6–7
11. नि., अ. 1, पा. 1, पृष्ठ 11